प्यारे नबी(सल्ल०) के चार यार (4)

हज़रत अली (रज़ि०)

इरफ़ान ख़लीली

अनुवाद

आबिद हामिदी

किताब के अन्दर

क्या	कहाँ
कुछ किताब के बारे में	7
कुछ अल्फ़ाज़ का मतलब	8
नाम और ख़ानदान	9
पैदाइश और बचपन	10
माँ-बाप	11
मुसलमान हो गए	12
मक्का की ज़िन्दगी	13
हिम्मत और हौसला	14
ज़ान पर खेल गए	15
मदीना हिजरत	16
पहली फ़तह	17
शादी	18
ख़ैबर की लड़ाई	19
ख़ैबर की फ़तह	20
दीन फैलाना	21
प्यारे नबी *(सल्ल.)* की जुदाई	22
सबसे तआवुन (सहयोग)	23
ख़लीफ़ा बने	24
क़ातिल की तलाश	25
गवर्नरों की तब्दीली	26

बसरा पर क़ब्ज़ा 27
सुलह की उम्मीद 28
धोखा दिया गया 29
जंगे-जमल का नतीजा 30
पानी बन्द कर दिया गया 31
एक बार फिर सुलह की कोशिश 32
फिर जंग शुरू 33
चालबाज़ी काम कर गई 34
फिर वही चालबाज़ी 35
एक नया गरोह 36
नहरवान की जंग 37
मिस्र पर मुआविया *(रज़ि.)* का क़ब्ज़ा 38
बग़ावत ही बग़ावत 39
शहीद कर दिए गए 40
आप *(रज़ि.)* कैसे थे? 41
मिसाली ज़िन्दगी 42
अमानतदारी 43
दरवेशों (फ़क़ीरों) जैसी ज़िन्दगी 44
कोई माँगनेवाला ख़ाली न जाता 45
अबू-तुराब 46
बहादुरी 47
क़ानून का एहतिराम 48
बदला लेना पसन्द नहीं था 49
दुश्मनों से अच्छा सुलूक 50
जँचा-तुला मशवरा देते थे 51
कारनामे 52

मुल्की इन्तिज़ाम 53
गवर्नरों की निगरानी 54
टैक्स का महकमा 55
अवाम के साथ मुहब्बत 56
मज़हबी ख़िदमात 57
इल्मी ख़िदमात 58
वसीयत 59
क़ब्र 60
ख़ास बातें 61
प्यारी नसीहतें 62

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया :

इन-न अलीयम-मिन्नी व अना मिन्हु

(हदीस : तिरमिज़ी)

अनुवाद

यह फ़रमान है रसूले-हाशमी *(सल्ल॰)* का
अली मेरे हैं और मैं हूँ अली का

(अबुल-मुजाहिद 'ज़ाहिद')

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

कुछ किताब के बारे में

ख़ुदा का शुक्र है कि 'प्यारे नबी (सल्ल.) के चार साथी' के चौथे भाग को पेश करने का सुअवसर मिल रहा है। यह भाग प्यारे नबी हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* के चौथे और आख़िरी ख़लीफ़ा हज़रत अली इब्ने-अबू-तालिब *(रज़ि.)* की मुबारक ज़िन्दगी के बारे में है।

ख़ुलफ़ाए-राशिदीन की ज़िन्दगी के हालात पढ़ने से हमें पता चलता है कि उन्होंने कितनी परेशानियाँ उठाकर और कितनी सादा ज़िन्दगी गुज़ार कर हुकूमत चलाई और अपनी हुकूमत में जनता को कितना आराम पहुँचाया। हक़ीक़त यह है कि उनकी जिन्दगी न सिर्फ़ दुनिया के सभी हाकिमों के लिए बल्कि सारे इनसानों के लिए एक नमूना है।

किताब के लेखक जनाब इरफ़ान ख़लीली (मरहूम) ने बड़े सादे और आसान अन्दाज़ में यह किताब लिखी है। ख़ुदा उनको इसका अच्छा बदला दे, यह हमारी दुआ है।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि.) दिल्ली, हिन्दी भाषा में इस्लामी शिक्षाओं को प्रस्तुत करने के काम में लगा हुआ है। इस किताब को पेश करते हुए हमें बड़ी ख़ुशी हो रही है। ख़ुदा से दुआ है कि यह किताब लोगों के लिए मुफ़ीद साबित हो और वे इससे ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाएँ।

कोशिश की गई है कि इस किताब में प्रूफ़ वग़ैरा की कोई ग़लती न रहे, फिर भी अगर कोई ग़लती नज़र आए तो हमें ज़रूर बाख़बर करें ताकि इस्लाह हो सके। हम शुक्रगुज़ार होंगे।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट
दिल्ली

कुछ अल्फ़ाज़ का मतलब

इस किताब में कुछ ऐसे अल्फ़ाज़ आएँगे, जिनको मुख़्तसर शक्ल में लिखा गया है। किताब पढ़ने से पहले ज़रूरी है कि उन अल्फ़ाज़ की मुकम्मल शक्ल और मतलब समझ लिया जाए, ताकि किताब पढ़ते वक़्त कोई परेशानी न हो। ऐसे अल्फ़ाज़ ये हैं :

सल्ल. : इसका पूर्ण रूप है, 'सल-लल-लाहु अलैहि वसल्लम' जिसका मतलब है, 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे!' हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो आदर और प्रेम के लिए दुआ के ये शब्द बढ़ा देते हैं।

अलैहि. : इसकी मुकम्मल शक्ल है, 'अलैहिस्सलाम' यानी 'उन पर सलामती हो!' नबियों और फ़रिश्तों के नाम के साथ आदर और प्रेम सूचक ये शब्द बढ़ा देते हैं।

रज़ि. : इसका पूर्ण रूप है, 'रज़ियल्लाहु अन्हु' इसके मानी हैं, 'अल्लाह उनसे राज़ी हो!' 'सहाबी' के नाम के साथ यह आदर और प्रेम सूचक दुआ बढ़ा देते हैं।

'सहाबी' उस ख़ुश क़िस्मत मुसलमान को कहते हैं, जिसे नबी (सल्ल.) से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। सहाबी का बहुवचन सहाबा है स्त्रीलिंग सहाबिया है।

रज़ि. अगर किसी सहाबिया के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो रज़ियल्लाहु अन्हा पढ़ते हैं और अगर सहाबा के लिए आए तो रज़ियल्लाहु अन्हुम कहते हैं।

नाम और ख़ानदान

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के चौथे और आख़िरी ख़लीफ़ा का नाम हज़रत अली *(रज़ि.)* था। कुन्यत अबुल-हसन और अबू-तुराब, लक़ब असदुल्लाह था। आपके अब्बू मियाँ का नाम अबू-तालिब बिन-अब्दुल-मुत्तलिब और अम्मी जान का नाम हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-असद था। इनके अब्बू मियाँ ने इनका नाम ज़ैद रखा था और अम्मी जान ने हैदर, लेकिन प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनका नाम अली रखा और इसी नाम से इतने मशहूर हुए कि इनका असली नाम कोई जानता ही नहीं। ये प्यारे नबी *(सल्ल.)* के सगे चचा के लड़के थे। इस तरह ये नबी के हक़ीक़ी चचा ज़ाद भाई हुए। आप *(रज़ि.)* हाशिमी ख़ानदान से थे।

बनू-हाशिम ख़ानदान क़ुरैश क़बीले का बहुत ही इज़्ज़त वाला ख़ानदान समझा जाता था। ख़ान-ए-काबा की देख-भाल का काम इसी ख़ानदान के सुपुर्द था। जिसकी वजह से पूरे अरब में इसको मज़हबी सरदारी का मन्सब हासिल था। सारा अरब इस ख़ानदान को बड़ी इज़्ज़त की निगाह से देखता था। हर जगह इनकी बड़ी आवभगत होती थी।

पैदाइश और बचपन

हज़रत अली *(रज़ि.)* हाथियोंवाली घटना से लगभग तीस साल बाद पैदा हुए थे यानी प्यारे नबी *(सल्ल.)* से ये तीस साल छोटे थे।

आप *(रज़ि.)* के अब्बू अबू-तालिब के बच्चों की तादाद बहुत थी लेकिन माली हालत कुछ कमज़ोर थी। सूखा पड़ने की वजह से परेशानी और बढ़ गई थी। बड़ी तंगी से गुज़र-बसर हो रही थी। प्यारे नबी *(सल्ल.)* चचा की यह परेशानी देखकर बहुत चिन्तित हुए। भला आप *(सल्ल.)* यह कैसे सहन कर सकते थे कि आप *(सल्ल.)* के चचा और इतनी तकलीफ़ उठाएँ! आप *(सल्ल.)* ने अपने दूसरे चचा हज़रत अब्बास *(रज़ि.)* से इस बात का ज़िक्र किया और यह बात रखी कि हम दोनों चचा के एक-एक लड़के को अपनी सरपरस्ती में ले लें इस तरह उनका बोझ कुछ हलका हो जाएगा। हज़रत अब्बास *(रज़ि.)* तैयार हो गए। उन्होंने हज़रत जाफ़र *(रज़ि.)* की और प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत अली *(रज़ि.)* की परवरिश अपने ज़िम्मे ले ली।

हज़रत अली *(रज़ि.)* उस दिन से प्यारे नबी *(रज़ि.)* के साथ रहने लगे— प्यारे नबी *(सल्ल.)* और आप *(सल्ल.)* की पाक बीवी हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* ने बड़ी ही मुहब्बत और शफ़क़त से आप *(रज़ि.)* की परवरिश और तरबियत की।

माँ-बाप

हज़रत अली *(रज़ि.)* के वालिद अबू-तालिब वही बुज़ुर्ग थे जिन्होंने अपने बाप और नबी *(सल्ल.)* के दादा अब्दुल-मुत्तलिब की वफ़ात के बाद प्यारे नबी *(सल्ल.)* की परवरिश की थी। बाप की तरह आप *(सल्ल.)* की देख-रेख की थी। अपने बच्चों से ज़्यादा प्यारे नबी *(सल्ल.)* से मुहब्बत करते थे। हर-हर क़दम पर आप *(सल्ल.)* का साथ दिया। आप *(सल्ल.)* के लिए सारे ख़ानदान से दुश्मनी मोल ली। हर तकलीफ़ और आज़माइश में प्यारे नबी *(सल्ल.)* का साथ दिया। लेकिन आख़िरी वक़्त तक मुसलमान न हुए। नबी *(सल्ल.)* को इस बात का बहुत दुख था।

हज़रत अली *(रज़ि.)* की माँ हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* भी प्यारे नबी *(सल्ल.)* को बहुत चाहती थीं। बिलकुल माँ की तरह उन्होंने बड़े प्यार से आप *(सल्ल.)* की परवरिश की। आप *(रज़ि.)* मुसलमान हो गई थीं और हिजरत करके मदीना चली गई थीं। वहीं आप *(रज़ि.)* का इन्तिक़ाल हुआ। प्यारे नबी *(सल्ल.)* फ़रमाया करते थे, "अबू-तालिब के बाद सबसे ज़्यादा मैं उन ही नेक बीबी का एहसानमन्द हूँ।"

आप *(सल्ल.)* ने अपना मुबारक कुर्ता कफ़न के लिए दिया और दफ़न के वक़्त आप *(सल्ल.)* ख़ुद क़ब्र में उतरे। ये पहली हाशिमी ख़ानदान की औरत थीं जो ईमान लाईं।

मुसलमान हो गए

हज़रत अली *(रज़ि.)* अभी दस ही साल के थे कि अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* को अपना नबी बनाया। आप *(सल्ल.)* ने इसका ज़िक्र अपनी बीवी हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* से किया, वे आप *(सल्ल.)* पर ईमान लाकर मुसलमान हो गईं।

एक दिन प्यारे नबी *(सल्ल.)* और हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* इबादत कर रहे थे। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने देखा तो बड़ी हैरत से तकते रह गए। जब आप *(सल्ल.)* इबादत कर चुके तो हज़रत अली *(रज़ि.)* ने बड़े ही भोलेपन से पूछा, "यह आप क्या कर रहे थे?" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनको असूल बात बताई। कुफ़्र और शिर्क की बुराइयाँ और तौहीद की अच्छाइयाँ समझाईं। ये सारी बातें उनके लिए बिलकुल नई थीं। हैरत के साथ कहा, "मैं अपने अब्बू से पूछूँगा।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* अभी अपनी नुबूवत का एलान नहीं करना चाहते थे इसलिए आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "तुम ख़ुद ग़ौर करो और किसी से ज़िक्र न करो।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* की परवरिश से आप *(रज़ि.)* की आदतें सँवर चुकी थीं और ज़ेहन बिलकुल साफ़ हो चुका था। फिर सबसे बढ़कर यह कि अल्लाह ने तौफ़ीक़ अता की। आप *(रज़ि.)* दूसरे ही दिन अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की ख़िदमत में हाज़िर हुए और इस्लाम क़बूल कर लिया।

मक्का की ज़िन्दगी

इस्लाम क़बूल करने के बाद तेरह साल तक हज़रत अली *(रज़ि.)* मक्का ही में रहे और यह उनकी ख़ुशक़िस्मती थी कि उन्हें हर वक़्त प्यारे नबी *(सल्ल.)* की ख़िदमत में हाज़िर रहने का मौक़ा मिला। आपस के मशवरे हों या तालीम-व-तरबियत की बातें, मुशरिकों के साथ बात-चीत हो या इबादत की घड़ी, हर वक़्त हज़रत अली *(रज़ि.)* मौजूद रहते थे। इसी लिए थोड़ी सी मुद्दत में दीन की बहुत सी बातें जल्द से जल्द सीख लीं।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* के मुसलमान होने से पहले प्यारे नबी *(सल्ल.)* छिप-छिपकर इबादत किया करते थे। हज़रत अली *(रज़ि.)* भी आप *(सल्ल.)* के साथ शरीक रहते थे। एक दिन अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के साथ नख़्ला नाम की घाटी में इबादत कर रहे थे कि अबू-तालिब उधर से गुज़रे। देखा कि भतीजा और बेटा दोनों कुछ अजीब सी हरकतें कर रहे हैं। जब प्यारे नबी *(सल्ल.)* इबादत कर चुके तो उनसे पूछा, "यह क्या कर रहे थे?" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अबू-तालिब के सामने दीने-इस्लाम की दावत पेश की। अबू-तालिब ने कहा, "ख़ैर कोई हरज नहीं लेकिन यह मुझसे नहीं हो सकता।" और फिर वहाँ से चले गए।

हिम्मत और हौसला

इस्लाम का पैग़ाम ख़ानदानवालों तक पहुँचाने के लिए अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने उनके ज़िम्मे खाने का इन्तिज़ाम किया। ख़ानदानवाले सब आ गए। हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)*, हज़रत अब्बास *(रज़ि.)*, अबू-लहब और अबू-तालिब सभी मौजूद थे। बहुत मज़े ले ले कर खाना खाया गया। जब सब खाने से फ़ारिग़ हो गए तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* खड़े हुए और फ़रमाया, "ऐ अब्दुल-मुत्तलिब के बेटो! ख़ुदा की क़सम मैं तुम्हारे सामने दुनिया और आख़िरत की बेहतरीन नेमत पेश करता हूँ, बोलो तुम में से कौन मेरा साथ देने के लिए तैयार है।" सबके सब चुप थे। इतने में हज़रत अली *(रज़ि.)* खड़े हुए और कहने लगे, "हालाँकि मैं उम्र में सबसे छोटा हूँ, मेरी आँखें भी दुख रही हैं, मेरी टाँगे पतली हैं फिर भी मैं आपका मददगार बनूँगा।" तीन बार प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने यही सवाल किया, हर बार हज़रत अली *(रज़ि.)* के सिवा कोई न बोला। जैसे सबको साँप सूँघ गया हो। महफ़िल ख़त्म हो गई और सब चले गए।

जान पर खेल गए

जब मक्कावालों ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* को (तौबा-तौबा) क़त्ल करने का मन्सूबा बनाया तो अल्लाह ने आप *(सल्ल.)* को उनके मन्सूबे से आगाह कर दिया और हुक्म दिया कि रातों रात मक्का छोड़कर मदीना चले जाएँ।

हज़रत अली *(रज़ि.)* उस वक़्त तेईस (23) साल के थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनको सारी बातें बता दीं और फ़रमाया, "आज रात में तुम मेरे बिस्तर पर सो जाना ताकि मक्कावालों को किसी तरह का शक न हो।"

यह काम जान को जोखिम में डालने का था लेकिन हज़रत अली *(रज़ि.)* तैयार हो गए। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* रात ही में चुपचाप मक्का छोड़कर चले गए।

मक्कावालों ने घर के चारों तरफ़ पहरा लगा दिया था। हज़रत अली *(रज़ि.)* निडर होकर आराम से सोते रहे। सुबह हुई तो आप *(रज़ि.)* बाहर निकले उनको देखकर पहरा देनेवाले हैरत में पड़ गए और आपस में कहने लगे, "यह क्या हुआ— मुहम्मद *(सल्ल.)* घर से कहाँ चले गए।"

हज़रत अली *(रज़ि.)* से उन लोगों ने बहुत पूछ-गछ की मगर वे नबी *(सल्ल.)* के बारे में कब बतानेवाले थे। दुश्मनों का प्लान (मन्सूबा) ख़ाक में मिल गया और अल्लाह का मन्सूबा कामयाब रहा।

मदीना-हिजरत

प्यारे नबी *(सल्ल.)* के मदीना चले जाने के बाद कुछ दिन तक हज़रत अली *(रज़ि.)* मक्का ही में रहे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* की हिदायत के मुताबिक़ जिस-जिस की अमानतें थीं उनको पहुँचाते रहे। जब इस काम से फ़ारिग़ हो गए तो एक दिन ख़ुद भी मदीना चले गए।

जब आप *(रज़ि.)* मदीना पहुँचे तो उस वक़्त नबी *(सल्ल.)* कुल्सूम-बिन-हद्म *(रज़ि.)* के यहाँ मेहमान थे। हज़रत अली *(रज़ि.)* भी आप *(सल्ल.)* के पास ठहर गए। फिर जब अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने मुहाजिरों और अनसार में मुआख़ात, यानी भाई चारा क़ायम किया तो हज़रत अली *(रज़ि.)* के साथ हज़रत सहल-बिन-हनीफ़ *(रज़ि.)* का भाई-चारा हुआ।

छः सात महीने के बाद प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने मसजिद बनवाने का इरादा किया। दूसरे सहाबा *(रज़ि.)* के साथ हज़रत अली *(रज़ि.)* ने भी इस काम में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया।

पहली फ़तह

अभी मदीना में आए हुए एक ही साल हुआ था कि मक्कावालों ने मदीना पर चढ़ाई कर दी। प्यारे नबी *(सल्ल.)* अपने 313 बहादुर सहाबा *(रज़ि.)* को लेकर बद्र के मैदान में डट गए। जंग शुरू हुई, दुश्मन की फ़ौज से तीन बहादुर निकले। उन्होंने मुक़ाबले के लिए मुसलमानों को ललकारा। इस तरफ़ से हम्ज़ा *(रज़ि.)* अली *(रज़ि.)* और उबैदा *(रज़ि.)* मैदान में निकल आए। लड़ाई शुरू हुई। सबसे पहले हज़रत अली *(रज़ि.)* ने अपने दुश्मन वलीद-बिन-उतबा को एक ही वार में ठिकाने लगा दिया। हज़रत उबैदा *(रज़ि.)* से शैबा का मुक़ाबला था। हज़रत अली *(रज़ि.)* उसकी तरफ़ लपके और उसको भी मौत के घाट उतार दिया।

मुशरिकों ने ग़ुस्से में आकर हर तरफ़ से लड़ाई शुरू कर दी। बस फिर क्या था। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने दुश्मन की सफ़ें की सफ़ें उलट दीं। जिधर पहुँच जाते, गाजर मूली की तरह काटना शुरू कर देते। आख़िरकार मुशरिकों के पाँव मैदान से उखड़ गए। मुसलमानों को कामयाबी नसीब हुई। यह पहली जंग थी जिसमें मुसलमानों को फ़तह और मुशरिकों की हार हुई थी।

शादी

इसी साल यानी सन् दो हिजरी में हज़रत अली *(रज़ि.)* ने अल्लाह के रसूल *(रज़ि.)* की छोटी बेटी हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* के साथ शादी का पैग़ाम दिया। नबी *(सल्ल.)* ने पूछा, "तुम्हारे पास महर अदा करने के लिए कुछ है?" आप *(रज़ि.)* बोले, "एक घोड़ा और एक ज़िरह है।" नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "घोड़ा रहने दो अलबत्ता ज़िरह को बेच दो।" हज़रत अली *(रज़ि.)* ने वह ज़िरह हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के हाथ चार सौ अस्सी (480) दिरहम में बेच दी और क़ीमत लाकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* के सामने पेश कर दी। आप *(सल्ल.)* ने हज़रत अली *(रज़ि.)* और हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* का निकाह ख़ुद ही पढ़ाया। इस तरह दोनों की शादी हो गई।

हज़रत अली *(रज़ि.)* प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ ही रहते थे। दस, ग्यारह महीने के बाद जब हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* की विदाई का वक़्त आया तो नबी *(सल्ल.)* ने हारिस-बिन-नोमान *(रज़ि.)* का मकान किराए पर दिला दिया और हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* विदा होकर उसी मकान में आ गईं।

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को घर की ज़रूरत की चीज़ों में एक पलंग, एक बिस्तर, एक चादर, एक मशकीज़ा और दो चक्कियाँ दिलाई गई थीं जो आख़िर दम तक उनके पास रहीं। हज़रत अली *(रज़ि.)* इसमें कोई बढ़ोत्तरी न कर सके।

ख़ैबर की लड़ाई

इसके बाद हज़रत अली *(रज़ि.)* लगभग हर लड़ाई में शरीक रहे और अपनी बहादुरी के जौहर दिखाते रहे। लेकिन आप *(रज़ि.)* के जंगी कारनामों में सबसे मशहूर ख़ैबर की फ़तह है। यह जंग सन् सात हिजरी में हुई।

यहूदी तरह-तरह की शरारतें और साज़िशें कर रहे थे। इसी लिए उन लोगों को मदीना से भी निकाल दिया गया था। वे सब जाकर ख़ैबर में बस गए थे। वहाँ उनके मज़बूत क़िले थे। उनकी शरारतों से तंग आकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनपर चढ़ाई कर दी। पहले दिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के हाथ में झण्डा दिया गया। दिन भर की लड़ाई के बाद कोई नतीजा नहीं निकला। दूसरे दिन यह ख़िदमत हज़रत उमर *(रज़ि.)* के हवाले की गई, फिर भी कोई कामयाबी नहीं हुई। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने सबको मुख़ातब करके फ़रमाया, "कल मैं यह झण्डा उसको दूँगा जो क़िले को फ़तह करेगा और जो अल्लाह और उसके रसूल से मुहब्बत करता है और अल्लाह और उसका रसूल उससे मुहब्बत करते हैं।" यह एलान सुनकर हर आदमी के दिल में ख़ाहिश हुई—

"काश वह ख़ुश नसीब मैं होता!"

ख़ैबर की फ़तह

दूसरे दिन जब सुबह हुई तो हर आदमी यह देखने को बेचैन था कि वह कौन ख़ुश-क़िस्मत है जिसे यह इज़्ज़त मिलेगी। अचानक अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने हज़रत अली *(रज़ि.)* को आवाज़ दी। यह नाम बिलकुल लोगों के गुमान के ख़िलाफ़ था। क्योंकि अली *(रज़ि.)* की आँखें दुखने को आई थीं। बहरहाल जब वे आए तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनकी आँखों में अपना लुआब लगाया। आँखें फ़ौरन ठीक हो गईं। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने झण्डा उनके हाथ में देकर मुहिम पर रवाना कर दिया।

इधर यहूदी मुक़ाबले के लिए इन्तिज़ार कर रहे थे। जब हज़रत अली *(रज़ि.)* को सामने मैदान में देखा तो उनका मशहूर सरदार मरहब अपनी ताक़त और बहादुरी के जोश में झूमता हुआ आगे बढ़ा और देखते ही देखते दोनों की तलवारें चमकने लगीं। मुक़ाबला बहुत सख़्त था लेकिन हज़रत अली *(रज़ि.)* भी बिजली की तरह तेज़ी से वार पर वार कर रहे थे। इतने में एक ख़ौफ़नाक चीख़ के साथ मरहब ज़मीन पर आ गिरा और ख़ून से लत-पत तड़पने लगा। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने क़िले पर हमला कर दिया। फिर तो मुसलमान टूट पड़े। अपने सरदार का यह हाल देखकर यहूदियों के दिलों में दहशत बैठ गई। वे मुक़ाबले की ताब न ला सके और क़िला फ़तह हो गया।

दीन फैलाना

जंगी ख़िदमात के साथ-साथ हज़रत अली *(रज़ि.)* दीन फैलाने का काम भी करते रहते थे। आप *(रज़ि.)* कभी अपने इस फ़र्ज़ से ग़ाफ़िल नहीं रहे। इस सिलसिले में यमन का वाक़िआ क़ाबिले-ज़िक्र है।

रमज़ान सन् दस हिजरी में प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत अली *(रज़ि.)* को बुलाया और यमन जाकर वहाँ के लोगों में दीन फैलाने का हुक्म दिया। आप *(रज़ि.)* ने अर्ज़ किया—

"ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ! आप मुझे ऐसी क़ौम में भेज रहे हैं जिसमें मुझसे ज़्यादा उम्र और तजरिबे के लोग हैं, उनको समझाना और उनके झगड़ों का फ़ैसला करना मेरे लिए बहुत मुशकिल होगा।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनको बहुत समझाया और आप *(रज़ि.)* के सीने पर हाथ रखकर दुआ की, "ऐ अल्लाह! इसके सीने को हिदायत से भर दे और इसकी ज़बान को सच बोलनेवाली बना।" यमन पहुँचकर हज़रत अली *(रज़ि.)* ने लोगों से मिलना-जुलना शुरू किया। उनको दीन की बातें ऐसे मुहब्बत भरे अन्दाज़ में समझाते कि उनके दिल में बैठ जातीं। देखते ही देखते यमन की काया पलट हो गई और पूरा का पूरा हमदान का क़बीला मुसलमान हो गया।

प्यारे नबी *(सल्ल०)* की जुदाई

प्यारे नबी *(सल्ल०)* दुनिया से तशरीफ़ ले जा चुके थे और आप *(सल्ल०)* की जुदाई से हज़रत अली *(रज़ि०)* का दिल बैठ सा गया था। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि०)* पर तो इस सदमे का असर इतना हुआ कि वे बीमार पड़ गईं और दिन-ब-दिन घुलने लगीं। हज़रत अली *(रज़ि०)* उनकी तीमारदारी, दिलजोई और तसल्ली के लिए हर वक़्त उन ही के पास रहते थे। कहीं भी आना-जाना बिलकुल बन्द कर दिया। इसी लिए हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि०)* की बैअत भी न कर सके।

इसी हालत में लगभग छः महीने बीत गए। आख़िरकार हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि०)* अल्लाह को प्यारी हो गईं। इसके बाद हज़रत अली *(रज़ि०)* खुद हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि०)* के पास गए और आप *(रज़ि०)* के हाथ पर बैअत कर ली।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि०)* हर मामले में आप *(रज़ि०)* से मशवरा लिया करते थे और आप *(रज़ि०)* बहुत खुले दिल से अपनी राय देते थे। जब मुरतद (दीन से फिर जानेवाले) लोगों ने मदीना पर हमला किया तो हज़रत अली *(रज़ि०)* ने डटकर उनका मुक़ाबला किया।

सवा दो साल के बाद हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि०)* भी अल्लाह को प्यारे हो गए। उनकी जगह पर हज़रत उमर फ़ारूक़ *(रज़ि०)* ख़लीफ़ा चुने गए।

सबसे तआवुन (सहयोग)

हज़रत अली *(रज़ि.)* ने हज़रत उमर *(रज़ि.)* को भी भरपूर तआवुन (सहयोग) किया और वे भी तमाम मामलों में हज़रत अली *(रज़ि.)* के मशवरे के बग़ैर कोई क़दम नहीं उठाते थे। नहावन्द की जंग में हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने उनको फ़ौज का सरदार बनाना चाहा लेकिन उन्होंने क़बूल नहीं किया। जब हज़रत उमर *(रज़ि.)* बैतुल मक़दिस जाने लगे तो हज़रत अली *(रज़ि.)* को अपना नायब बना कर गए। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने भी अपनी बेटी उम्मे कुलसूम *(रज़ि.)* की शादी हज़रत उमर *(रज़ि.)* से कर दी।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* के बाद हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* ख़लीफ़ा चुने गए। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* का आख़िरी दौर बड़े ही फ़ितने व फ़साद का दौर था। फ़सादियों को समझाने बुझाने में हज़रत अली *(रज़ि.)* ने बेमिसाल कोशिशें कीं। उसी मौक़े पर एक दिन हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* ने उनसे पूछा, "मुल्क में मौजूदा हंगामों की असूल वजह और उसे दूर करने की तदबीर क्या हो सकती है?" हज़रत अली *(रज़ि.)* ने ख़ुलूस और सफ़ाई के साथ फ़रमाया, "आप *(रज़ि.)* के गवर्नरों की हद से गुज़र जानेवाली पॉलिसी।" हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* ने फ़रमाया, "मैंने गवर्नरों के चुनाव में उन ही सिफ़ात का लिहाज़ रखा है जो उमर *(रज़ि.)* रखा करते थे फिर क्या वजह है?" हज़रत अली *(रज़ि.)* ने जवाब दिया, "हज़रत उमर *(रज़ि.)* सबकी नकेल अपने हाथ में रखते थे, उनकी पकड़ सख़्त थी और आप बहुत नर्मदिल हैं। आपकी नर्मदिली की वजह से फ़ायदा उठाकर गवर्नर मनमानी कर जाते हैं। आम लोग समझते हैं कि यह सब आपके हुक्म से हो रहा है। इसी लिए अवाम आपको अपना निशाना बनाते हैं।"

ख़लीफ़ा बने

हंगामा बढ़ता गया और फ़सादियों ने मौक़ा पाकर हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* को शहीद कर दिया। यह ख़बर सुनते ही हज़रत अली *(रज़ि.)* बेताब हो गए। आप *(रज़ि.)* उन लोगों पर बहुत नाराज़ हुए जिन्हें हिफ़ाज़त के लिए मुक़र्रर किया गया था। अपने बेटे को तो आप *(रज़ि.)* ने सज़ा भी दी।

हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* की शहादत के बाद मदीना में हंगामी माहौल पैदा हो गया। हर आदमी अपनी इज़्ज़त-आबरू और जान बचाए अपने घर बैठ गया। ख़िलाफ़त का मामला खटाई में पड़ गया। इधर फ़सादियों का ख़याल था कि अगर वे ऐसे ही वापस चले गए तो उनकी ये सारी हरकतें बग़ावत में शुमार होंगी। उन्होंने अपने तौर पर कुछ लोगों से मुलाक़ातें कीं मगर वे ख़लीफ़ा बनने के लिए तैयार न हुए। आख़िरकार फ़सादियों ने एलान करा दिया कि अगर दो दिन में ख़लीफ़ा नहीं चुन लिया गया तो हम हज़रत अली *(रज़ि.)*, तलहा *(रज़ि.)* और ज़ुबैर *(रज़ि.)* को क़त्ल कर देंगे।

यह एलान सुनकर लोगों में खलबली मच गई। लोग घरों से निकल पड़े। ख़लीफ़ा बनाने के लिए आपस में बात-चीत करने लगे। हज़रत तलहा *(रज़ि.)* और ज़ुबैर *(रज़ि.)* ने तो साफ़ इनकार कर दिया। हज़रत अली *(रज़ि.)* भी तैयार नहीं हुए लेकिन जब मुहाजिरों और अनसार ने उनपर बहुत ज़ोर डाला तो वे मजबूर होकर राज़ी हो गए। लोग बैअत के लिए टूट पड़े। इस तरह तीसरे दिन 21 ज़िल-हिज्जा सन् 35 हिजरी को हज़रत अली *(रज़ि.)* ख़लीफ़ा चुन लिए गए।

क़ातिल की तलाश

ख़लीफ़ा होने के बाद हज़रत अली *(रज़ि.)* का सबसे पहला काम हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के क़ातिलों का पता लगाना और उनको सज़ा देना था। लेकिन दिक़्क़त यह थी कि शहादत के वक़्त हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* की बीवी हज़रत नायला *(रज़ि.)* के सिवा वहाँ और कोई मौजूद न था। वे भी मुहम्मद-बिन-अबू-बक्र *(रज़ि.)* के सिवा किसी को नहीं पहचानती थीं। मुहम्मद-बिन-अबू-बक्र *(रज़ि.)* को जब पकड़ा गया तो उन्होंने क़सम खा कर कहा, "मैं गया तो क़त्ल के इरादे ही से था लेकिन हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के एक जुमले से शर्मिन्दा होकर मैं वापस आ गया और दूसरों ने आप *(रज़ि.)* को शहीद कर दिया, जिनको मैं भी नहीं जानता कि कौन थे।" हज़रत नायला *(रज़ि.)* ने मुहम्मद-बिन-अबू-बक्र *(रज़ि.)* के इस बयान की तस्दीक़ कर दी।

बड़ी तहक़ीक़ और कोशिश की गई मगर क़ातिलों का पता न चल सका। और न कोई गवाह मिल सका। शक की बुनियाद पर हज़रत अली *(रज़ि.)* किसी को सज़ा देना मुनासिब नहीं समझते थे। इसके अलावा हालात कुछ ऐसे पैदा हो गए थे कि उस वक़्त क़ातिलों का पता लगाना और उनसे बदला लेना कोई आसान काम न था। इसलिए हज़रत अली *(रज़ि.)* मजबूर हो गए और कोई कार्रवाई न कर सके।

गवर्नरों की तब्दीली

हज़रत अली *(रज़ि.)* की यह सोच बराबर बनी रही कि गवर्नरों की अनुचित पॉलिसी और अपनी हदों से आगे बढ़ जाने की वजह से मुल्क में ये हालात पैदा हुए हैं। इसका ज़िक्र वे हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* से भी कर चुके थे। उन्होंने सोचा कि पहले इस मसले से निपट लिया जाए फिर क़िसास वाला मामला उठाएँगे।

आप *(रज़ि.)* ने सब गवर्नरों को तब्दील कर दिया। उनकी जगह पर दूसरे भेज दिए गए। हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* के सिपाहियों ने तबूक के पास नए गवर्नरों को रोक दिया और मदीना वापस जाने पर मजबूर कर दिया। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने अमीर मुआविया *(रज़ि.)* को लिखा कि मुहाजिरों और अनसार ने इत्तिफ़ाक़ के साथ मेरे हाथ पर बैअत की है इसलिए या तो मेरे हाथ पर बैअत करो या फिर जंग के लिए तैयार हो आजो। अमीर मुआविया *(रज़ि.)* ने अपने ख़ास क़ासिद (दूत) के ज़रीए जवाब दिया और ख़त में बिसमिल्लाह के बाद हज़रत अली *(रज़ि.)* का नाम और नीचे अपना नाम लिख दिया। क़ासिद ने ज़बानी बताया कि हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* की शहादत की वजह से तहलका मच गया है। साठ हज़ार आदमी उनका बदला लेने के लिए बेचैन हैं। इस मामले में जो देर हो रही है इसका ज़िम्मेदार वे आपको ठहराते हैं। बन्द लिफ़ाफ़े में यह जंग का एलान था। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने भी जंग की तैयारी शुरू कर दी।

बसरा पर क़ब्ज़ा

हज़रत तलहा *(रज़ि.)* और हज़रत ज़ुबैर *(रज़ि.)* का भी यही ख़याल था कि पहले हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के क़ातिलों से बदला लिया जाए। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने अपनी मजबूरी ज़ाहिर कर दी। लेकिन वे दोनों मुत्मइन नहीं हुए और मक्का को रवाना हो गए। रास्ते में हज़रत आइशा *(रज़ि.)* से मुलाक़ात हुई जो हज से वापस आ रही थीं। दोनों ने मदीना की सूरते-हाल और हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* से जंगी तैयारी की रूदाद बयान की। हज़रत आइशा *(रज़ि.)* भी उनके साथ मक्का वापस आ गईं।

मक्का पहुँचकर मशवरा हुआ कि बसरा पर चढ़ाई की जाए। वहाँ हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के क़ातिल हैं उनको क़ब्ज़े में किया जाए। रबीउल-अव्वल सन् 36 हिजरी को एक फ़ौज बसरा को रवाना हुई। जब बसरा के पास ये लोग पहुँचे तो गवर्नर ने आने का सबब मालूम कराया। हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने आने का सबब उस्मान *(रज़ि.)* के क़ातिलों की गिरफ़्तारी बताया।

अब तो दोनों गरोह आमने-सामने थे लेकिन एक दूसरे को समझाने-बुझाने का सिलसिला जारी था। बसरा की फ़ौज में वे फ़सादी भी मौजूद थे जो सिर्फ़ लड़ना ही चाहते थे। जब कई दिन बीत गए तो फ़सादियों ने मौक़ा पाकर रात में हज़रत आइशा *(रज़ि.)* पर हमला कर दिया। कुछ देर की जंग के बाद बसरा पर क़ब्ज़ा हो गया। यह घटना 26 रबीउल-आख़िर सन् 36 हिजरी की है।

सुलह की उम्मीद

हज़रत अली *(रज़ि.)* को जब मालूम हुआ कि एक फ़ौज हज़रत आइशा *(रज़ि.)*, तलहा *(रज़ि.)* और ज़ुबैर *(रज़ि.)* की निगरानी में बसरा की तरफ़ रवाना हो चुकी है तो आप *(रज़ि.)* ने शाम जाने का इरादा छोड़ दिया और बसरा की तरफ़ रवाना हो गए। हज़रत अली *(रज़ि.)* की फ़ौज में ऐसे लोगों की तादाद अच्छी ख़ासी थी जो हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के क़त्ल को काफ़ी नहीं समझते थे बल्कि मुसलमानों में फूट डालकर ख़िलाफ़ते-राशिदा को ख़त्म करना चाहते थे, यही उनका मक़सद था। वे अपने आपको ज़ाहिर भी नहीं करना चाहते थे।

बहरहाल हज़रत अली *(रज़ि.)* बसरा उस वक़्त पहुँचे जब हज़रत आइशा *(रज़ि.)* का उसपर क़ब्ज़ा हो चुका था। पहुँचते ही आप *(रज़ि.)* ने क़अक़ाअ को हज़रत तलहा *(रज़ि.)* और हज़रत ज़ुबैर *(रज़ि.)* के पास भेजा और कहलाया कि हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के ख़ून के बदले बहुत से लोग मारे जा चुके हैं। अब क्या इरादा है? क़अक़ाअ ने यह भी कहा कि हज़रत अली *(रज़ि.)* भी उस्मान *(रज़ि.)* के क़ातिलों को बग़ैर सज़ा के नहीं छोड़ना चाहते मगर वे अभी मजबूर हैं। थोड़ा इत्मीनान हासिल हो तो उनको सज़ा ज़रूर दी जाएगी। हज़रत तलहा *(रज़ि.)* और ज़ुबैर *(रज़ि.)* ने भी इसपर रज़ामन्दी ज़ाहिर कर दी। कई दिनों तक बात-चीत का सिलसिला जारी रहा। चूँकि इसमें किसी की कोई ज़ाती ग़रज़ शामिल न थी इसलिए सुलह हो जाने की पूरी-पूरी उम्मीद हो गई।

धोखा दिया गया

इस सूरते-हाल की ख़बर जब हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के क़ातिलों और अब्दुल्लाह-बिन-सबा के चेलों को हुई, जिनकी तादाद हज़रत अली *(रज़ि.)* की फ़ौज में अच्छी ख़ासी थी, तो उनके सीनों पर साँप लोट गया। उन्होंने आपस में मशवरा करके एक नई स्कीम बनाई।

घुप अँधेरी रात में जब चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था, दोनों फ़ौजों के सिपाही सुकून और इत्मीनान से आराम कर रहे थे तो उस वक़्त साज़िश करनेवालों ने हज़रत आइशा *(रज़ि.)* की फ़ौज पर हमला कर दिया। घबराहट में दोनों फ़रीक़ (पक्ष) यह समझे कि हमारे साथ धोखा किया गया है और जंग शुरू हो गई। बड़े घमासान की लड़ाई हो रही थी कि हज़रत अली *(रज़ि.)* घोड़ा बढ़ाकर मैदान में आ गए और हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम *(रज़ि.)* को बुलाकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* की एक पेशेनगोई याद दिलाई। उसे सुनते ही हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम *(रज़ि.)* का सारा जोश व ख़रोश ठण्डा पड़ गया। आप जंग का मैदान छोड़कर चल दिए। हज़रत तलहा *(रज़ि.)* लड़ते-लड़ते शहीद हो गए। हज़रत ज़ुबैर *(रज़ि.)* के पीछे एक सबाई लग गया। उसने मौक़ा पाकर रास्ते ही में उनको शहीद कर दिया।

जंगे-जमल का नतीजा

अब जंग के मैदान में सिर्फ़ उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा *(रज़ि.)* रह गई थीं। घमासान की लड़ाई हो रही थी। हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ऊँट के हौद में बैठी हुई थीं। इसी लिए उसे जंगे-जमल[1] कहते हैं। सबाई फ़सादी बढ़-चढ़कर हमला कर रहे थे। उनका नापाक इरादा यह था कि किसी तरह उम्मुल-मोमिनीन *(रज़ि.)* को क़ैद कर लें। आप *(रज़ि.)* के हिफ़ाज़ती दस्ते के बहादुर सिपाही ऊँट को अपने घेरे में लिए हुए उनके हमलों का बराबर जवाब दे रहे थे।

हज़रत अली *(रज़ि.)* ने जो ये हालात देखे तो बहुत परेशान हुए। आप *(रज़ि.)* के इशारे से एक आदमी ने ऊँट के पैर पर तलवार मारी। ऊँट बैठ गया। लड़ाई ठण्डी पड़ गई। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने हज़रत आइशा *(रज़ि.)* के भाई मुहम्मद-बिन-अबू-बक्र *(रज़ि.)* को हुक्म दिया कि वे अपनी बहन की ख़बरगीरी करें और एक आम मुनादी करा दी कि भागनेवालों का पीछा न किया जाए। ज़ख़्मियों पर घोड़े न दौड़ाए जाएँ। माले-ग़नीमत न लूटा जाए। हथियार डाल देनेवालों को अमान दी जाए।

फिर आप *(रज़ि.)* ख़ुद हज़रत आइशा *(रज़ि.)* के पास गए। ख़ैरियत पूछी और कुछ दिन बसरा में ठहराने के बाद मुहम्मद बिन-अबू-बक्र *(रज़ि.)* के साथ मदीना भेज दिया। चलते वक़्त हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने लोगों से कहा, "ऐ लोगो! हमारी आपस की कशमकश सिर्फ़ एक ग़लत फ़हमी का नतीजा थी। वरना मुझमें और अली *(रज़ि.)* में कोई झगड़ा न था।" हज़रत अली *(रज़ि.)* ने भी इस बात को सही कहा।

---

1. जमल के माने ऊँट के हैं।

पानी बन्द कर दिया गया

हज़रत अली *(रज़ि.)* जब तक़रीबन अस्सी हज़ार की फ़ौज लेकर शाम की सरहद में दाख़िल हुए तो उनके अगले दस्ते को शामी दस्ते ने आगे बढ़कर रोक दिया। दोनों दस्तों में दिन.भर जंग होती रही। रात में शामी दस्ता पीछे हट गया और हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* को सूरते-हाल की ख़बर पहुँचाई। आप *(रज़ि.)* ने सिफ़्फ़ैन का मैदान मुक़ाबले के लिए सही बताया। शामी फ़ौज ने वहाँ पहुँचकर मोरचे क़ायम कर लिए और नदी के घाट पर क़ब्ज़ा कर लिया। उनको हिदायत थी कि हज़रत अली *(रज़ि.)* की फ़ौज को पानी न लेने दिया जाए।

जब हज़रत अली *(रज़ि.)* की फ़ौज सिफ़्फ़ैन पहुँची तो उनको पानी न मिलने की वजह से सख़्त परेशानी उठानी पड़ी। उन्होंने रोक लगानेवालों पर हमला बोल दिया। नतीजे के तौर पर शामी फ़ौज पीछे हट गई और घाट पर कूफ़ी फ़ौज का क़ब्ज़ा हो गया। लेकिन उन्होंने शामी फ़ौज का पानी बन्द नहीं किया। दोनों फ़ौजें दरिया से पानी लेती रहीं और आपस में मेल-जोल पैदा हो गया।

एक बार फिर सुलह की कोशिश

शुरू में छोटी-छोटी झड़पें होती रहीं लेकिन रजब का महीना शुरू होते ही जंग रुक गई। इसी बीच सुलह की कोशिश का मौक़ा मिल गया। हज़रत अबू-दरदा *(रज़ि.)* और हज़रत अबू-अमामा-बाहली *(रज़ि.)* दोनों अमीर मुआविया *(रज़ि.)* के पास पहुँचे और कहा, "तुम अली *(रज़ि.)* से क्यों लड़ते हो? क्या वे इमामत के तुमसे ज़्यादा हक़दार नहीं?" अमीर मुआविया *(रज़ि.)* ने जवाब दिया, "उस्मान *(रज़ि.)* के क़ातिलों से क़िसास के लिए लड़ता हूँ।" उन्होंने फिर कहा, "क्या उस्मान *(रज़ि.)* को अली *(रज़ि.)* ने क़त्ल किया है।"

अमीर मुआविया *(रज़ि.)* ने जवाब दिया, "क़त्ल तो नहीं किया, क़ातिलों को पनाह दी है अगर वे उनको मेरे हवाले कर दें तो मैं बैअत करने को तैयार हूँ।"

दोनों बुज़ुर्ग फिर हज़रत अली *(रज़ि.)* के पास पहुँचे और अमीर मुआविया *(रज़ि.)* की शर्त से आगाह किया। उसे सुनकर लगभग बीस हज़ार सिपाहियों ने फ़ौज से निकल कर कहा, "हम सब उस्मान *(रज़ि.)* के क़ातिल है।" दोनों ने जब यह रंग देखा तो हैरत में डूब गए कि उनसे किस तरह निपटा जा सकता है और फिर जंग का मैदान छोड़कर साहिली इलाक़े की तरफ़ निंकल गए और जंग में कोई हिस्सा नहीं लिया।

फ़िर जंग शुरू

सफ़र (सन् 37 हिजरी) का महीना शुरू होते ही जंग दोबारा शुरू हो गई और दिन पर दिन ज़ोर पकड़ती गई। कई दिनों तक यह सिलसिला जारी रहा यहाँ तक कि जुमे का दिन आ गया। इस दिन कमी होने के बजाए लड़ाई में और तेज़ी आ गई। इतना ज़्यादा ख़ून-ख़राबा हुआ जिसकी मिसाल इस्लामी इतिहास में नहीं मिलती। सुबह से शाम और फिर शाम से सुबह हो गई। लड़ाई का सिलसिला बराबर जारी रहा। नारों की गरज, घोड़ों की टापों और तलवारों की झनकार से ज़मीन काँप उठी।

अगली सुबह को ज़ख़्मियों और लाशों को उठाने के लिए जंग रोकी गई तो पता चला कि हज़रत अली *(रज़ि.)* का पल्ला भारी रहा। हज़रत अमीर मुआविया *(रज़ि.)* को यक़ीन हो गया कि अगर जंग का यह सिलसिला जारी रहा तो हार का मुँह देखना पड़ेगा। उन्होंने सुलह करने की कोशिश की मगर अब हज़रत अली *(रज़ि.)* ने इनकार कर दिया। अमीर मुआविया *(रज़ि.)* बहुत फ़िक्रमन्द नज़र आ रहे थे। कुछ सोचने के बाद अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* ने अमीर मुआविया *(रज़ि.)* से कहा, "आप घबराएँ नहीं, कल मैं ऐसी चाल चलूँगा कि या तो जंग ख़त्म हो जाएगी या फिर अली *(रज़ि.)* की फ़ौज में फूट पड़ जाएगी।"

चालबाज़ी काम कर गई

13 सफ़र सन् 37 हिजरी का दिन था। दोनों फ़ौजें आमने-सामने खड़ी थीं। जंग शुरू होनेवाली थी कि शामी फ़ौज का एक दस्ता नेज़ों पर क़ुरआन पाक बाँधे हुए मैदान में आया और साथ ही यह एलान करता जाता था, "अल्लाह का कलाम मौजूद है, इसी से फ़ैसला करा लिया जाए।" यह मन्ज़र देखकर हज़रत अली *(रज़ि.)* की फ़ौज में खलबली मच गई। कुछ सिपाही शामी दस्ते की हाँ में हाँ मिलाने लगे और कुछ जंग के लिए तैयार थे। इस तरह हज़रत अली *(रज़ि.)* की फ़ौज में फूट पड़ गई। उनको लाख समझाया गया कि यह शामियों की मक्कारी है। जब उनको अपनी नाकामी का यक़ीन हो गया तो उन्होंने यह चाल चली है। लेकिन शामियों का जादू तो चल चुका था। तमाम कोशिश के बावजूद एक गरोह ने जंग करने से साफ़ इनकार कर दिया। मजबूर होकर जंग बन्द कर देना पड़ी और ख़तो-किताबत से यह तय हुआ कि ख़िलाफ़त का मसला दो पंचों के सुपुर्द कर दिया जाए। वे जो फ़ैसला करें उसे दोनों फ़रीक़ों को मानना होगा।

हज़रत अमीर मुआविया *(रज़ि.)* की तरफ़ से अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* और हज़रत अली *(रज़ि.)* की तरफ़ से हज़रत अबू-मूसा अशअरी *(रज़ि.)* के नाम पेश किए गए।

फिर वही चालबाज़ी

तय की गई तारीख़ पर हज़रत अबू-मूसा अशअरी *(रज़ि.)* और अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* दूमतुल-जिन्दल में जमा हुए। उनके साथ चार-चार सौ साथी थे। एक ख़ेमे में दोनों में बात-चीत शुरू हुई। हर पहलू पर ख़ूब बहस हुई। आख़िरी फ़ैसला यह हुआ कि हज़रत अली *(रज़ि.)* और हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* दोनों को ख़िलाफ़त से अलग कर दिया जाए और मुसलमानों की मजलिसे-शूरा को फिर नए सिरे से इख़तियार दे दिया जाए कि वह जिसको चाहे ख़लीफ़ा चुन लें।

दूसरे दिन मस्जिद में सब इकट्ठा हुए। पहले अबू-मूसा-अशअरी *(रज़ि.)* ने फ़ैसले का एलान किया। जब अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* की बारी आई तो उन्होंने बहुत होशियारी से फ़ैसला वदल दिया। कहने लगे भाइयो! अली *(रज़ि.)* को जैसा कि अबू-मूसा *(रज़ि.)* ने माज़ूल किया, मैं भी माज़ूल करता हूँ लेकिन अमीर मुआविया *(रज़ि.)* को इस मन्सब पर क़ायम रखता हूँ, क्योंकि वे हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के वली और ख़िलाफ़त के सबसे ज़्यादा हक़दार हैं। इस बयान से लोगों में बेचैनी पैदा हो गई। लोगों ने मुख़ालिफ़त में नारे लगाने शुरू कर दिए।

एक नया गरोह

मुआहिदा करते वक़्त ही हज़रत अली *(रज़ि.)* की फ़ौज में इख़्तिलाफ़ पैदा हो गया था। फ़ैसले के एलान ने और आग पर तेल का काम किया। उन लोगों ने खुलकर मुख़ालिफ़त शुरू कर दी। खुल्लम-खुल्ला वे कहने लगे कि दीन के मामले में किसी को हकम (पंच) बनाना कुफ़्र है। ऐसा करनेवाले और उसे माननेवाले सब काफ़िर हैं। और इस अक़ीदे को जो न माने उसको क़त्ल कर देना जाइज़ है। उनका कलिमा था "ला हुक्-म इल्लल्लाह" यानी फ़ैसले का हक़ सिर्फ़ अल्लाह को है। इस गरोह को इतिहास में ख़ारिजी कहा जाता है।

इन्होंने हज़रत अली *(रज़ि.)* की बैअत तोड़कर अब्दुल्लाह-बिन-वहबुर्रासी के हाथ पर बैअत कर ली। इस ख़याल के लोग जहाँ-जहाँ भी थे वे सब नहरवान में जमा हो गए और वहाँ आम तौर पर क़त्ल और ग़ारतगरी का बाज़ार गर्म कर दिया। जो भी मिलता उसको या तो अपने साथ मिला लेते या मौत के घाट उतार देते।

नहरवान की जंग

हज़रत अली *(रज़ि.)* शाम पर दोबारा हमले की तैयारी कर रहे थे। लेकिन जब ख़ारिजियों की बग़ावत और ग़ारतगरी की दास्तानें सुनीं तो आपने इरादा बदल दिया और ख़ारिजियों को उनकी इन हरकतों की सज़ा देने का फ़ैसला कर लिया।

नहरवान पहुँचकर आप *(रज़ि.)* ने हज़रत अबू-अय्यूब-अनसारी *(रज़ि.)* और क़ैस-बिन-साद-बिन-उबादा *(रज़ि.)* को ख़ारिजियों को समझाने-बुझाने के लिए भेजा। लेकिन दोनों हज़रात नाकाम वापस आ गए। इसके बाद अली *(रज़ि.)* ने उनपर चढ़ाई कर दी। ख़ारिजियों में से कुछ तो जंग शुरू होने से पहले ही उनका साथ छोड़कर चले गए और कुछ तौबा करके हज़रत अली *(रज़ि.)* के साथ हो गए। बाक़ी चार हज़ार ने बड़ी हिम्मत और बहादुरी से मुक़ाबला किया और दुश्मन के दाँत खट्टे कर दिए। लेकिन नतीजे के तौर पर हार का सामना करना पड़ा। इस जंग से ख़ारिजियों का ख़ातिमा तो नहीं हुआ अलबत्ता वे इधर-उधर फैल गए और हज़रत अली *(रज़ि.)* के ख़िलाफ़ ख़ुफ़िया तौर पर ज़हर फैलाना शुरू कर दिया।

यह जंग शव्वाल सन् 37 हिजरी में हुई।

मिस्र पर मुआविया *(रज़ि.)* का क़ब्ज़ा

कुछ अफ़वाहों की वजह से हज़रत अली *(रज़ि.)* ने मिस्र के गवर्नर हज़रत क़ैस-बिन-साद *(रज़ि.)* को वापस बुला लिया और उनकी जगह पर मुहम्मद-बिन-अबू-बक्र *(रज़ि.)* को गवर्नर बना दिया। वे मिज़ाज के तेज़ थे। जाते ही सख़्ती से काम लिया। बस फिर क्या था, मिस्र में बग़ावत फैल गई। मौक़े से फ़ायदा उठाकर हज़रत अमीर मुआविया *(रज़ि.)* ने अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* को मिस्र पर हमला करने का हुक्म दे दिया। इधर से हज़रत अली *(रज़ि.)* ने अशतर नख़ई को गवर्नर की मदद के लिए भेजा। लेकिन इससे पहले कि मिस्र पहुँचते रास्ते ही में सरहद के किसी रईस ने ज़हर देकर उनका काम तमाम कर दिया। अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* एक बड़ी फ़ौज लेकर मिस्र पहुँच गए। मुहम्मद-बिन-अबू-बक्र *(रज़ि.)* के लिए उस फ़ौज से मुक़ाबला बहुत मुश्किल था। फिर हज़रत अमीर मुआविया *(रज़ि.)* ने ख़ुद एक फ़ौज के साथ आकर उनको पीछे से घेर लिया। मुहम्मद-बिन-अबू-बक्र *(रज़ि.)* के साथी या तो मारे गए या भाग खड़े हुए। ख़ुद उन्होंने एक वीरान खण्डहर में छिपकर पनाह ली। लेकिन वहाँ भी वे पकड़े गए और बड़ी बेरहमी के साथ क़त्ल कर दिए गए। इस तरह सन् 38 हिजरी में मिस्र हज़रत अली *(रज़ि.)* के हाथ से निकल गया और उसपर हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* का क़ब्ज़ा हो गया।

बग़ावत ही बग़ावत

मिस्र के हाथ से निकल जाने के बाद ख़िलाफ़त को बहुत नुक़सान पहुँचा। इधर ख़ारिजियों का फ़ितना जड़ पकड़ चुका था। वे कभी इधर फ़ितना फैलाते तो कभी उधर। इस्लामी हुकूमत को बराबर नुक़सान पहुँचाते रहते थे। दूसरी तरफ़ हज़रत अमीर मुआविया *(रज़ि.)* मौक़े की तलाश में रहते थे। सन् 40 हिजरी में उन्होंने बिसर-बिन-इरतात को तीन हज़ार की फ़ौज देकर रवाना किया। वह तेज़ी के साथ मदीना पहुँच गया। उस वक़्त मदीना के गवर्नर हज़रत-अय्यूब-अनसारी *(रज़ि.)* थे। उन्होंने मदीना में ख़ून-ख़राबे को पसन्द न किया और हज़रत अली *(रज़ि.)* के पास कूफ़ा चले गए। बिसर ने डरा-धमका कर मदीनावालों से हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* के लिए बैअत ली। इसी तरह उसने मक्का और यमन में भी ज़बरदस्ती मुआविया *(रज़ि.)* की बैअत ली। मक्का में तो उसने कुछ लोगों के मकान तक गिरवा दिए। यमन में तो उसने बहुत ज़्यादा ज़ुल्म ढाए। यहाँ तक कि हज़रत अली *(रज़ि.)* के दो मासूम भतीजों को बड़ी बेदर्दी से क़त्ल करा दिया।

इन हालात की वजह से हज़रत अली *(रज़ि.)* ज़ेहनी तौर से बहुत परेशान थे। फिर भी आप *(रज़ि.)* हर बग़ावत को ख़त्म करने के लिए बराबर फ़ौजें भेजते रहते थे। आप *(रज़ि.)* हर तरफ़ निगाह रखते थे। सबसे ज़्यादा आप *(रज़ि.)* ख़ारिजियों के फ़ितनों से तंग आ गए थे।

शहीद कर दिए गए

नहरवान की लड़ाई में ख़ारिजी हज़ारों की तादाद में मारे गए थे। उन्होंने तय किया कि जब तक हज़रत अली *(रज़ि.)*, हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* और अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* ज़िन्दा हैं ये आपस की लड़ाइयाँ और ख़ून-ख़राबा बन्द नहीं होगा। इस काम के लिए उन्होंने तीन आदमियों को तैयार किया। हज़रत अली *(रज़ि.)* के लिए अब्दुर्रहमान-बिन-मलजम, हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* के लिए बर्क-बिन-अब्दुल्लाह तमीमी को और हज़रत अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* के लिए अम्र-बिन-बक्र तमीमी को।

17 रमज़ान सन् 40 हिजरी को फ़ज्र के वक़्त तीनों पर हमला किया गया। अमीर मुआविया *(रज़ि.)* पर वार ओछा पड़ा, वे बच गए। हज़रत अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* उस दिन इमामत के लिए न आ सके थे। जिस आदमी ने उनकी जगह पर नमाज़ पढ़ाई थी वह मारा गया। कूफ़ा में हज़रत अली *(रज़ि.)* जामा मसजिद में दाख़िल हुए और मामूल के मुताबिक़ सोनेवालों को जगाने लगे। इब्ने-मलजम ने मौक़ा पाकर आप *(रज़ि.)* पर हमला कर दिया। आप ख़ून में तर-बतर होकर गिर पड़े। क़ातिल को पकड़ लिया गया।

तलवार ज़हर में बुझी हुई थी जिसका असर बहुत तेज़ी के साथ सारे शरीर में फैल गया। आख़िरकार 20 रमज़ान जुमे की रात को आप *(रज़ि.)* अल्लाह को प्यारे हो गए। "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन"। शहादत के वक़्त आप *(रज़ि.)* की उम्र तिरसठ साल थी। आप *(रज़ि.)* ने सिर्फ़ चार साल नौ महीने ख़िलाफ़त की। अल्लाह आपसे राज़ी हो।

आप *(रज़ि॰)* कैसे थे?

हज़रत अली *(रज़ि॰)* का क़द दरम्याना, रंग गेहुँवा, आँखें बड़ी-बड़ी, चेहरा ख़ूबसूरत और रौनक़दार, सीना चौड़ा और बालदार, बदन गठा हुआ, पेट बड़ा और निकला हुआ, सिर के बाल उड़े हुए, दाढ़ी बड़ी, घनी और बहुत चौड़ी थी। आख़िर में बाल बिल्कुल सफ़ेद हो गए थे। आपने सिर्फ़ एक बार मेंहदी का ख़िज़ाब किया था।

आप *(रज़ि॰)* बहुत सादा ज़िन्दगी बसर करते थे। क़ीमती कपड़े पहनने का आप *(रज़ि॰)* को कोई शौक़ न था। अमामा बाँधना आप *(रज़ि॰)* को बहुत पसन्द था। कुर्ते की आस्तीन छोटी होती थी। तहबन्द सिर्फ़ आधी पिन्डलियों तक होता था। कपड़ों में पैवन्द लगे रहते थे। बाएँ हाथ में अँगूठी पहनते जिसपर "लिल्लाहिल्मुल्क" खुदा था। आप *(रज़ि॰)* पर सर्दी-गर्मी का कोई असर न होता था। क्योंकि प्यारे नबी *(सल्ल॰)* ने ख़ैबर की लड़ाई के वक़्त आप *(रज़ि॰)* के लिए दुआ फ़रमाई थी कि "ऐ अल्लाह! इससे गर्मी और सर्दी दूर कर।"

आप *(रज़ि॰)* दरवेशों (फ़क़ीरों) वाली ज़िन्दगी पसन्द करते थे। खाना बहुत ही सादा और रुखा-फीका खा लिया करते थे।

आपकी कई बीवियाँ थीं, जिनमें से एक नबी *(सल्ल॰)* की बेटी हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि॰)* थीं। जब तक हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि॰)* ज़िन्दा रहीं आपने दूसरा निकाह नहीं किया। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि॰)* से आपके तीने बेटे हज़रत हसन, हज़रत हुसैन, हज़रत मुहसिन *(रज़ि॰)* और दो बेटियाँ हज़रत ज़ैनब और हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि॰)* पैदा हुईं। इनके अलावा भी आपके कई बेटे और बेटियाँ थीं।

मिसाली ज़िन्दगी

हज़रत अली *(रज़ि.)* की परवरिश और तरबियत ख़ुद नबी *(सल्ल.)* की निगरानी में हुई थी। इसलिए आप *(रज़ि.)* का दामन हर तरह की बुराई से पाक था। आप *(रज़ि.)* की ज़िन्दगी एक मिसाली ज़िन्दगी था। आप *(रज़ि.)* अच्छे अख़लाक़ और नेक तरबियत के चलते-फिरते नमूना थे। आप *(रज़ि.)* की ज़बान से कभी किसी ने कुफ़्र या शिर्क की बात नहीं सुनी। आप *(रज़ि.)* का सिर अल्लाह के सिवा किसी के आगे नहीं झुका। जहालत के ज़माने की हर तरह की बुराई या गुनाह से आप पाक-साफ़ रहे। शराब, जो अरबवालों की घुट्टी में पड़ी थी उसको आप *(रज़ि.)* ने चखा तक न था। जुए के पास आप कभी फटके भी न थे। ग़रज़ यह कि आप *(रज़ि.)* की ज़िन्दगी उस ज़माने की तमाम बुराइयों से पाक-साफ़ थी।

कितने अच्छे थे हमारे ख़लीफ़ा *(रज़ि.)*

अल्लाह उनसे राज़ी हो!

अमानतदारी

हज़रत अली *(रज़ि.)* बड़े दियानतदार और अमानतदार थे। इसी लिए तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हिजरत पर जाते वक़्त सारी अमानतें आप *(रज़ि.)* के हवाले की थीं कि जिन-जिन लोगों की हैं उनको पहुँचा दें।

ख़लीफ़ा होने के बाद भी आप *(रज़ि.)* ने हमेशा सच्चाई और दियानतदारी से काम लिया। एक बार बैतुलमाल में कुछ नारंगियाँ आईं। आप *(रज़ि.)* के बेटे हज़रत हसन और हुसैन *(रज़ि.)* अभी छोटे थे। उन्होंने एक-एक नारंगी उठा ली। आप *(रज़ि.)* ने जब यह देखा तो उनसे लेकर वे नारंगियाँ वापस कर दीं।

एक बार की बात है असफ़हान से कुछ माले-ग़नीमत आया। उसमें एक रोटी भी थी। आप *(रज़ि.)* ने माल के साथ उस रोटी के भी हिस्से किए और क़ुरआ डालकर बाँट दिया।

एक बार बैतुल-माल का सारा माल तक़सीम करके आप *(रज़ि.)* ने उसमें झाड़ू दी फिर दो रकअत नमाज़ शुकराने के तौर पर अदा की।

दरवेशों (फ़क़ीरों) जैसी ज़िन्दगी

हज़रत अली *(रज़ि.)* दुनयवी ठाठ-बाट से बहुत घबराते थे। ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए कम से कम सामान को काफ़ी समझते थे। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को जो सामान मिला था आख़िर वक़्त तक घर में वही रहा। आप *(रज़ि.)* ने उसमें इज़ाफ़ा करना ज़रूरी न समझा।

अपनी ख़िलाफ़त के ज़माने में भी आप *(रज़ि.)* के रहन-सहन में कोई फ़र्क़ न आया। एक बार अब्दुल्लाह-बिन-ज़रीर नाम के एक साहब आपके साथ खाने में शरीक थे। दस्तरख़ान पर खाना बहुत मामूली और सादा था। उन्होंने कहा, "अमीरुल-मोमिनीन! क्या आपको परिन्दों के गोश्त का शौक़ नहीं है?" हज़रत अली *(रज़ि.)* ने फ़रमाया, "ऐ इब्ने-ज़रीर! वक़्त के ख़लीफ़ा को मुसलमानों के माल में सिर्फ़ दो प्यालों का हक़ है। एक ख़ुद खाए और अपने बाल-बच्चों को खिलाए और दूसरा अल्लाह के बन्दों के सामने पेश करे।"

कोई माँगनेवाला ख़ाली न जाता

हज़रत अली *(रज़ि.)* दिल के बड़े ग़नी थे। आप *(रज़ि.)* के दरवाज़े से कोई माँगनेवाला ख़ाली हाथ नहीं जाता था।

एक बार रात भर बाग़ में पानी देकर थोड़े से जौ मज़दूरी में मिले। सुबह के वक़्त घर तशरीफ़ लाए। उनको पिसवाकर एक तिहाई का हरीरा पकवाया। जब पक कर तैयार हुआ तो किसी मिस्कीन (ग़रीब) ने दरवाज़े पर आवाज़ दी। आप *(रज़ि.)* ने सब उठाकर उसे दे दिया। बाक़ी का आधा पकने को फिर रखवा दिया। तैयार होते ही एक यतीम ने आवाज़ दी। आपने सब उठाकर उसे दे दिया। बाक़ी जो बचा था उसे पकने को फिर रखवा दिया। पकने के बाद वह एक मुशरिक क़ैदी को दे दिया गया। रात भर मेहनत मज़दूरी करने के बावजूद उस खुदा के बन्दे ने सारा दिन फ़ाक़े में गुज़ार दिया। अल्लाह को आप *(रज़ि.)* का यह अमल इतना पसन्द आया कि आप *(रज़ि.)* की तारीफ़ में यह आयत नाज़िल फ़रमाई।

"वे अल्लाह की मुहब्बत में मिस्कीन और यतीम
और क़ैदी को खाना खिलाते हैं।"

(क़ुरआन : सूरा-दहर, आयत-8)

अबू-तुराब

एक बार प्यारे नबी *(सल्ल.)* हज़रत अली *(रज़ि.)* को ढूँढते-ढूँढते मसजिद में तशरीफ़ लाए। देखा कि बे तकल्लुफ़ी से आप *(रज़ि.)* ज़मीन पर पड़े सो रहे हैं। चादर पीठ के नीचे से सरक गई है और पीठ पर मिट्टी लगी हुई है। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* को यह सादगी बहुत पसन्द आई। आप *(सल्ल.)* उनके पास बैठ गए और अपने मुबारक हाथों से मिट्टी साफ़ करते जाते थे और कहते जाते थे "इज्लिस या अबा तुराब" (ऐ मिट्टीवाले अब उठ बैठ।)

नबी *(सल्ल.)* की ज़बान की दी हुई यह कुन्यत हज़रत अली *(रज़ि.)* को इतनी अच्छी मालूम हुई थी कि जब कोई उस नाम से आपको पुकारता था तो ख़ुशी से आप *(रज़ि.)* मुसकुराने लगते थे।

बहादुरी

बहादुरी और दिलेरी हज़रत अली *(रज़ि.)* की ख़ास सिफ़त थी। कोई बड़ी से बड़ी जंग ऐसी न थी जिसमें आप *(रज़ि.)* शरीक न हुए हों और अपनी बहादुरी के जोहर न दिखाए हों।

बद्र की जंग के मौक़े पर आप *(रज़ि.)* जवान थे। उस वक़्त आप *(रज़ि.)* का मुक़ाबला एक ऐसे दुश्मन से हुआ जो अरब का माना हुआ पहलवान और बहादुर था, यानी वलीद-बिन-उतबा। आप *(रज़ि.)* ने एक ही वार में उसका काम तमाम कर दिया और फिर शैबा के मुक़ाबले में आ गए और उसे भी जहन्नम में पहुँचा दिया। उहद की लड़ाई के मौक़े पर जब तलहा-बिन-अबी-तलहा ने मुक़ाबले के लिए ललकारा तो हज़रत अली *(रज़ि.)* ही उसके मुक़ाबले पर उतर आए और उसके सिर पर तलवार का ऐसा वार किया कि सिर के दो टुकड़े हो गए।

ख़न्दक़ की जंग के मौक़े पर अरब का मशहूर पहलवान अम्र-बिन-अब्दे-वुद्द सामने आता है और मुसलमानों को मुक़ाबले की दावत देता है तो हज़रत अली *(रज़ि.)* मैदान में निकल आते हैं और देखते ही देखते उसको धूल चटा देते हैं।

ख़ैबर की लड़ाई में क़िला फ़तह करना और फिर मरहब से मुक़ाबला करना कोई मामूली बात न थी। कितने बहादुर और दिलेर थे हज़रत अली *(रज़ि.)*! अल्लाह आपसे राज़ी हों।

क़ानून का एहतिराम

एक बार हज़रत अली *(रज़ि.)* की ज़िरह कहीं खो गई। बाद में मालूम हुआ कि वह ज़िरह एक यहूदी के पास है। आपने उससे अपनी ज़िरह माँगी। उसने देने से मना कर दिया और कहने लगा, "यह तो मेरी है।"

हज़रत अली *(रज़ि.)* उस वक़्त ख़ुद ख़लीफ़ा थे। चाहते तो वे उस यहूदी से ज़िरह ले सकते थे लेकिन आप *(रज़ि.)* ने इसे मुनासिब नहीं समझा और क़ाज़ी की अदालत में मुक़द्दमा पेश कर दिया। क़ाज़ी ने इस्लामी क़ानून के मुताबिक़ दो गवाह पेश करने को कहा। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने अपने बड़े बेटे हज़रत हसन *(रज़ि.)* और ग़ुलाम क़ंबर को गवाही में पेश कर दिया। क़ाज़ी ने उनकी गवाही नामन्ज़ूर कर दी। क्योंकि एक उनका लड़का और दूसरा उनका ग़ुलाम था। ऐसी गवाही इस्लाम में क़बूल नहीं की जाती। मजबूर होकर हज़रत अली *(रज़ि.)* को अपनी ज़िरह छोड़नी पड़ी।

इधर यहूदी क़ाज़ी से यह फ़ैसला सुनकर दंग रह गया। वह अच्छी तरह जानता था कि ज़िरह हज़रत अली *(रज़ि.)* ही की है लेकिन मुनासिब गवाह न होने की वजह से वे इससे महरूम हो गए। इस फ़ैसले से यहूदी इतना प्रभावित हुआ कि फ़ौरन ही इस्लाम क़बूल कर लिया और ज़िरह हज़रत अली *(रज़ि.)* को वापस कर दी।

बदला लेना पसन्द नहीं था

एक बार कुछ लोग क़ैद करके हज़रत अली *(रज़ि.)* के सामने लाए गए। उनपर यह इलज़ाम था कि वे हज़रत अली *(रज़ि.)* को खुल्लम-खुल्ला बुरा-भला कहते थे और उनके ख़िलाफ़ झूठी बातें लोगों में फैलाते थे जिसकी वजह से बग़ावत फैलने का अन्देशा था।

हज़रत अली *(रज़ि.)* के सामने जब यह मामला पेश हुआ तो आपने फ़रमाया, "जब तक ये अमलन कोई जुर्म न करें इनको सज़ा नहीं दी जा सकती। रह गया बुरा-भला कहना और गालियाँ देना तो मैं इन बातों का जवाब नहीं देता। तुम चाहो तो बुरा-भला कहने के बदले में इनको बुरा-भला कह सकते हो लेकिन यह याद रखो कि गन्दी बातें ज़बान से निकालना अल्लाह को पसन्द नहीं। वह ऐसे लोगों से नाराज़ होता है जो किसी को गालियाँ देते हैं।"

इसके बाद वे सब क़ैदी छोड़ दिए गए। देखा आपने! हज़रत अली *(रज़ि.)* ने बदला लेकर अपनी ज़बान गन्दी करना पसन्द नहीं फ़रमाया। हमें भी चाहिए कि हम अपनी ज़बान को गन्दी न होने दें ताकि अल्लाह हमसे ख़ुश हो।

दुश्मनों से अच्छा सुलूक

अपनों से तो अच्छा सुलूक सभी कर लेते हैं अलबत्ता दुश्मनों के साथ अच्छा बरताव करना एक बड़ी बात है। हज़रत अली *(रज़ि.)* इस मामले में भी बहुत आगे थे। आपकी ज़िन्दगी का एक बड़ा हिस्सा दुश्मनों के साथ जंग में गुज़रा। आप *(रज़ि.)* ने दुश्मनों के साथ हमेशा अच्छा बरताव किया।

एक बार एक जंग में जब उनका दुश्मन गिरकर नंगा हो गया तो आपने हाथ रोक लिया और उसको छोड़कर अलग खड़े हो गए ताकि उसको शर्मिन्दगी न हो।

हज़रत ज़ुबैर *(रज़ि.)* जंगे-जमल की फ़ौज के सरदारों में से थे लेकिन जब उनका क़ातिल इब्ने-जरमूज़ आपके पास उनका सिर और तलवार लेकर आया तो आप *(रज़ि.)* ने मुँह फेर लिया और फ़रमाया, "ज़ुबैर *(रज़ि.)* के क़ातिल को जहन्नम की ख़ुशख़बरी दे दो।"

जंगे-जमल जब ख़त्म हुई तो आप *(रज़ि.)* ने फ़ौरन एलान करवा दिया कि भागनेवालों का पीछा न किया जाए। ज़ख़्मियों पर घोड़े न दौड़ाए जाएँ, माले-ग़नीमत न लूटा जाए।

आप *(रज़ि.)* का सबसे बड़ा दुश्मन आपका क़ातिल इब्ने-मलजम हो सकता था। उसके लिए आप *(रज़ि.)* ने वसीयत की थी कि उससे मामूली तौर पर क़िसास (बदला) लिया जाए। दुश्मनों के साथ अच्छे सुलूक की इससे बड़ी मिसाल और क्या हो सकती है? अल्लाह आपसे राज़ी हो।

जँचा-तुला मशवरा देते थे

हज़रत अली *(रज़ि.)* का मशवरा बहुत ही जँचा-तुला और सही होता था। बग़ैर सोचे-समझे आप कभी अपनी राए नहीं देते थे। पहले आप मामले के हर पहलू पर ग़ौर करते, फिर मशवरा देते थे। इसी लिए अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* आपसे हर मामले में ज़रूर मशवरा लिया करते थे और ताइफ़ की जंग के मौक़े पर तो आप *(सल्ल.)* उनसे इतनी देर तक मशवरा करते रहे कि लोगों को इस पर रश्क आने लगा।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* और हज़रत उमर *(रज़ि.)* के तो हज़रत अली *(रज़ि.)* ख़ास मशवरा देनेवालों में थे। हज़रत उमर *(रज़ि.)* तो कोई मुहिम बग़ैर आप *(रज़ि.)* से मशवरा किए शुरू नहीं करते थे। उमर *(रज़ि.)* को तो हज़रत अली *(रज़ि.)* की राय पर इतना भरोसा था कि एक मौक़े पर आपने फ़रमाया, "अगर अली *(रज़ि.)* न होते तो उमर हलाक हो जाता।"

हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* भी आप *(रज़ि.)* से मशवरा किया करते थे। ख़ास तौर पर जब फ़सादियों ने गड़बड़ फैलाई तब तो हज़रत अली *(रज़ि.)* के मशवरों ने आपकी बहुत सी मुशकिलों को आसान कर दिया।

कारनामे

हज़रत अली *(रज़ि.)* के ख़लीफ़ा होते ही इस्लामी रियासतों में आपसी इख़्तिलाफ़ात की ऐसी आग भड़क उठी और मिल्लत का शीराज़ा इस तरह बिखर गया कि हज़रत अली *(रज़ि.)* की जान तोड़ कोशिश के बावजूद फिर वह इकट्ठा न हो सका। दिन-पर-दिन मुश्किलें बढ़ती ही चली गईं। गरोहबन्दी और फ़िरक़ा परस्ती की ऐसी वबा (महामारी) फैली जिसका इलाज क़ियामत तक नहीं हो सकता। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* की शहादत के बाद हज़रत हुज़ैफ़ा *(रज़ि.)* ने सच फ़रमाया था कि, "आह! उस्मान *(रज़ि.)* के क़त्ल से इस्लाम में वह दरार पड़ गई जो अब क़ियामत तक बन्द न होगी।"

बहरहाल इस फ़ितना-फ़साद और लड़ाइयों की वजह से हज़रत अली *(रज़ि.)* को मौक़ा ही न मिला कि वे मुल्की मामलों में ठण्डे दिल से ग़ौर कर सकते, या फिर इस्लामी हुकूमत को बढ़ाने की कोशिश करते। फिर भी आप जो कुछ कर सकते थे उसमें किसी तरह की कोई कोताही नहीं की।

इन हालात के बावजूद आप अपने फ़र्ज़ से ग़ाफ़िल कभी न रहे। बल्कि ऐसी-ऐसी मिल्ली, दीनी और इल्मी ख़िदमात अन्जाम दीं जो अपनी मिसाल आप हैं। उनका हाल आप आगे पढ़ेंगे।

मुल्की इन्तिज़ाम

हज़रत अली *(रज़ि.)* मुल्क के इन्तिज़ाम के सिलसिले में हज़रत उमर फ़ारूक़ *(रज़ि.)* के क़दम-ब-क़दम चलना चाहते थे। उस ज़माने के इन्तिज़ामात में किसी तरह की तब्दीली उनको पसन्द न थी। उनको पूरा यक़ीन था कि हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने जिस विभाग का जो दस्तूर और काम करने का जो तरीक़ा बनाया था उसमें कोई कमी न थी जिसे अब पूरा किया जा सके। इसमें किसी तरह की कमी-बेशी की बात सुनना भी आप *(रज़ि.)* को गवारा न थी।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने हिजाज़ के यहूदियों को उनकी शरारतों और फ़ितना-फ़साद की हरकतों से तंग आकर मुल्क से निकाल दिया था और नजरान में आबाद कर दिया था। हज़रत अली *(रज़ि.)* के ज़माने में उनका एक वफ़्द आया और बड़े ख़ुशामदाना अन्दाज़ में अपने पुराने वतन (हिजाज़) में वापस आने की इजाज़त माँगी। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने उनको जवाब दिया :

"मैंने उमर *(रज़ि.)* से ज़्यादा सही फ़ैसला करनेवाला कोई नहीं देखा। वे जो भी फ़ैसला करते थे उसके बारे में अच्छी तरह सोच समझ लेते थे, तब उसपर अमल करते थे। मैं उनका फ़ैसला बदल नहीं सकता।"

यहूदी अपना सा मुँह लेकर वापस चले गए।

गवर्नरों की निगरानी

कोई भी नज़्म क़ायम करने के सिलसिले में सबसे ज़रूरी काम नज़्म चलानेवालों की निगरानी है। यह देखते रहना कि गवर्नर (आमिल) दिलचस्पी और मेहनत से काम कर रहा है या नहीं, मनमानी तो नहीं कर रहा है। हज़रत अली *(रज़ि.)* जब किसी को गवर्नर बनाते थे तो उसको बहुत ही ज़रूरी और मुफ़ीद नसीहतें फ़रमा दिया करते थे और कभी-कभी उनके काम की जाँच-पड़ताल भी कराते रहते थे। अवाम की शिकायतों और गवर्नरों के बेजा ख़र्च पर कड़ी नज़र रखते थे।

एक दिन की बात है। अर्दशेर के गवर्नर मिसक़ला ने बैतुलमाल से क़र्ज़ लेकर पाँच सौ लौंडियाँ और ग़ुलाम ख़रीदे और उनको आज़ाद कर दिया। कुछ दिनों के बाद हज़रत अली *(रज़ि.)* ने उस रक़म का मुतालबा किया। मिसक़ला ने कहा, "ख़ुदा की क़सम! उस्मान *(रज़ि.)* की नज़र में इतनी रक़म का छोड़ देना कोई बात न थी। लेकिन ये तो एक-एक पाई का हिसाब करते हैं।" यह कहकर वह हज़रत अमीर मुआविया *(रज़ि.)* की पनाह में चला गया।

एक बार आप *(रज़ि.)* के चचा के बेटे और बसरा के गवर्नर हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* ने बैतुलमाल से एक बड़ी रक़म ली। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने इसपर एतराज़ किया। उन्होंने जवाब दिया, "मैंने अभी अपना पूरा हक़ नहीं लिया है।" जवाब तो दे दिया लेकिन डर के मारे बसरा छोड़कर मक्का चले गए।

टैक्स का महकमा

हज़रत अली *(रज़ि.)* से पहले जंगलों से कोई फ़ायदा हासिल नहीं किया जाता था। आप *(रज़ि.)* ने अपने ज़माने में जंगलों पर भी टैक्स लगाया। चुनांचे बर्स के जंगल पर चार हज़ार दिरहम की मालगुज़ारी लगा दी।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* के ज़माने में घोड़ों की आमतौर पर तिजारत होने लगी थी। इसलिए उन्होंने उसपर ज़कात मुक़र्रर कर दी थी। हज़रत अली *(रज़ि.)* के नज़दीक अवामी ज़रूरत और जंगी फ़ायदा इसी में था कि घोड़ों की नस्ल को बढ़ाया जाए। इसलिए आप *(रज़ि.)* ने अपने ज़माने में घोड़ों पर ज़कात ख़त्म कर दी।

टैक्स वसूल करने में यूँ तो आप *(रज़ि.)* बहुत सख़्त थे लेकिन जो लोग माज़ूर या ग़रीब थे उनके साथ आप किसी तरह की सख़्ती नहीं करते थे बल्कि उनकी मदद किया करते थे और उनकी देखभाल का ख़ास ख़याल रखते थे।

अवाम के साथ मुहब्बत

हज़रत अली *(रज़ि.)* अपने अवाम के लिए रहमत का फ़रिश्ता थे। ग़रीबों और मिस्कीनों के लिए बैतुलमाल का दरवाज़ा हर वक़्त खुला रहता था। जो रक़म जमा होती वह उनमें बाँट दी जाती थी जो उसके हक़दार होते थे।

ईरान में साज़िशें और बग़ावतें बराबर होती रहती थीं लेकिन हज़रत अली *(रज़ि.)* उनके साथ भी रहम-करम से पेश आते थे। यहाँ तक कि ईरानी आप *(रज़ि.)* के इस बरताव से इतने मुतास्सिर हुए कि यह कहने पर मजबूर हो गए,

"ख़ुदा की क़सम इस अरबी ने नौ शेरवाँ आदिल की याद ताज़ा कर दी।"

मज़हबी ख़िदमात

हज़रत अली *(रज़ि.)* की ख़िलाफ़त का पूरा ज़माना आपस की जंगों की नज़्र (भेंट) हो गया और आपको इतनी फ़ुरसत ही नहीं मिली कि आप किसी और काम की तरफ़ अपना दिमाग़ लगा सकते। बहरहाल फिर भी आप अपने इस असली फ़र्ज़ से ग़ाफ़िल न रहे।

ईरान और आरमीनिया में कुछ नव मुस्लिम ईसाइयों ने जब इस्लाम छोड़ देने का एलान किया तो आप ख़ामोश बैठे नहीं रहे बल्कि फ़ौरी तौर पर इस तरफ़ तवज्जुह फ़रमाई। उनमें से अकसर ने अपनी उस ग़लती से तौबा की और फिर से इस्लाम क़बूल कर लिया।

ख़ारिजियों ने जो फ़ितना फैला रखा था आपने उसे भी ख़त्म करने की पूरी कोशिश की। दूसरी तरफ़ वे सबाई जो आपको ख़ुदा कहने लगे थे उनको भी आपने इबरतनाक सज़ाएँ दीं।

हज़रत अली *(रज़ि.)* ने मुसलमानों की अख़लाक़ी गिरावट को भी नज़र अन्दाज़ नहीं किया। जुर्म के लिहाज़ से नई-नई सज़ाएँ तजवीज़ कीं। शराब पीने की सज़ा में कोड़ों की तादाद मुक़र्रर न थी। आपने इसके लिए 80 कोड़े तजवीज़ किए। किसी जुर्म का इरादा करनेवाले को आप मुजरिम नहीं मानते थे। चुनाँचे एक आदमी ने एक मकान में नक़ब लगाई और चोरी करने से पहले ही पकड़ लिया गया। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने उसपर हद (सज़ा) नहीं जारी की।

इल्मी ख़िदमात

हज़रत अली *(रज़ि.)* को तक़रीर करने में बड़ी महारत हासिल थी। यह अल्लाह की देन थी। कठिन से कठिन मसलों पर और बड़ी से बड़ी सभाओं में आप फ़ौरन तक़रीर करने खड़े हो जाते थे और अवाम को हम ख़याल बना लेते थे। आपकी तक़रीर इतनी जोशीली होती थी कि मुर्दा दिलों में भी गर्मी आ जाती थी। जंग के मैदान में जब आप फ़ौजियों के सामने तक़रीर करते थे तो वे जोश में आकर दीवाने हो जाते थे और ऐसी बहादुरी से लड़ते थे कि दुश्मन के दाँत खट्टे कर देते थे।

अरबी ज़बान के इल्मे-नह्व (व्याकरण) की बुनियाद भी आप ही ने रखी थी। एक बार आपने एक आदमी को क़ुरआन पाक ग़लत पढ़ते सुना तो आपको ख़याल पैदा हुआ कि कोई ऐसा क़ायदा बना दिया जाए जिससे एराब (ज़ेर-ज़बर लगाकर पढ़ने) में ग़लती न हो सके। आपने अबुल-असवद को कुछ बुनियादी क़ायदे बताकर बाक़ी उसूल मुरत्तब करने का हुक्म दिया। इस तरह इल्मे नह्व वुजूद में आ गया।

आप शाइर भी थे लेकिन आपने शाइरी की तरफ़ कोई ख़ास तवज्जुह नहीं फ़रमाई।

वसीयत

हज़रत अली *(रज़ि.)* का जब आख़िरी वक़्त क़रीब आ गया तो आपने बेटों, हज़रत हसन *(रज़ि.)*, हुसैन *(रज़ि.)* और मुहम्मद-बिन-हनफ़िय्या को बुलाकर पास बिठाया। पहले हसनैन[1] *(रज़ि.)* से मुख़ातिब हुए और फ़रमाया, "मैं तुमको ख़ुदा का तक़वा अपनाने और दुनिया में न फँस जाने की वसीयत करता हूँ। तुम किसी चीज़ के न मिलने पर अफ़सोस न करना। हमेशा हक़ बात कहना। यतीमों पर रहम और बेकसों की मदद करना। ज़ालिम के दुश्मन और मज़लूमों के मददगार रहना। क़ुरआन पर अमल करना। अल्लाह के हुक्मों पर अमल करने की वजह से अगर कोई आदमी तुमपर मलामत करे तो उसकी मलामत से न डरना।"

फिर मुहम्मद-बिन-हनफ़िय्या से मुख़ातिब हुए और फ़रमाया—

"मैं तुमको भी इन ही बातों की वसीयत करता हूँ और देखो दोनों भाइयों के अदब और एहतिराम का ख़याल रखना। उनका हक़ तुम पर ज़्यादा है। उनकी मंशा के ख़िलाफ़ तुम कोई काम न करना।" फिर हसनैन *(रज़ि.)* से मुख़ातिब हुए। "तुमको भी मुहम्मद-बिन-हनफ़िय्या के साथ अच्छे बरताव और मुहब्बत से पेश आना चाहिए।"

फिर आम वसीयत तहरीर कराने लगे कि वफ़ात का वक़्त क़रीब आ गया और— सिवाए "ला इला-ह इल्लल्लाहु" के दूसरा कलिमा ज़बाने-मुबारक से न निकला।

1. हज़रत हसन *(रज़ि.)* और हुसैन *(रज़ि.)* दोनों भाइयों का एक साथ ज़िक्र करने पर "हसनैन" लफ़्ज़ का इस्तेमाल किया जाता है।

क़ब्र

हज़रत अली *(रज़ि.)* की क़ब्र के बारे में मुख़्तलिफ़ रिवायतें हैं। लेकिन हक़ीक़त यह है कि आज तक यह तय न हो सका कि आपकी क़ब्र है कहाँ? कुछ रिवायतों के मुताबिक़ कूफ़ा की मसजिद में है। कुछ के मुताबिक़ खुद उनके घर में है। कुछ लोग कहते हैं कि कूफ़ा से दस मील के फ़ासले पर दफ़न किए गए। कुछ रिवायतों में है कि हज़रत हसन *(रज़ि.)* ने आपके जिस्म को ख़ारिजियों के इस डर की वजह से कि कहीं आपकी लाश की बेहुरमती न करें, निकाल कर एक दूसरी जगह पोशीदा तौर पर दफ़न कर दिया। एक और रिवायत में है कि आपके ताबूत को मदीना ले जाने लगे कि रास्ते में वह ऊँट जिसपर आपका ताबूत था, भाग गया। बहुत ढूँढा मगर कहीं पता न चला। दूसरी रिवायत है कि वह ऊँट तय्य की सरज़मीन में मिला और आपको वहीं दफ़न कर दिया गया।

असूल वजह वही मालूम होती है कि ख़ारिजियों के डर से आपको ऐसी जगह दफ़न किया गया जिसका हाल आम लोगों को मालूम न हो सके।

ख़ास बातें

- आप *(रज़ि.)* लड़कों में सबसे पहले मुसलमान थे।
- आप *(रज़ि.)* ने बचपन में भी कभी बुतों की पूजा नहीं की।
- आप *(रज़ि.)* को हिजरत की रात में प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अपने बिस्तर पर लिटाया था।
- आप *(रज़ि.)* हर जंग में शरीक हुए सिवाए तबूक की जंग के।
- आप *(रज़ि.)* के जिस्म पर उहुद की जंग में सोलह (16) ज़ख़्म आए।
- आप *(रज़ि.)* को प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अपने कुंबे (परिवार) में शरीक किया।
- आप *(रज़ि.)* बनी-हाशिम में सबसे पहले ख़लीफ़ा थे।
- आप *(रज़ि.)* को प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने दुनिया और आख़िरत में अपना भाई बनाया।
- आप *(रज़ि.)* के बारे में प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—
  "मैं इल्म का शहर हूँ, अली *(रज़ि.)* उसका दरवाज़ा हैं।"
- आप *(रज़ि.)* के सुपुर्द सूरा "तौबा" की इशाअत और तब्लीग़ की गई थी।
- आप *(रज़ि.)* ही के ज़रीए यमन में इस्लाम की रौशनी फैली।

अल्लाह आपसे राज़ी हो!

प्यारी नसीहतें

हज़रत अली *(रज़ि.)* ने फ़रमाया—

* आलिम वह है जिसने इल्म हासिल करके उसपर अमल किया।
* सबसे बड़ी अमीरी अक़्ल है।
* सबसे बड़ी ग़रीबी बेवक़ूफ़ी है।
* बेवक़ूफ़ के साथ रहने से परहेज़ करो।
* किसी भी आदमी को सिवाए गुनाह के और किसी से न डरना चाहिए।
* अल्लाह के सिवा किसी भी आदमी से उम्मीद नहीं रखनी चाहिए।
* जो आदमी कोई चीज़ नहीं जानता उसे सीखने में शर्म नहीं करनी चाहिए।
* मुसीबत को पोशीदा (छिपाकर) रखना जवाँ मर्दी है।
* यक़ीन से दिल मुत्मइन होता है।
* जिसने अपने आपको पहचान लिया उसने अपने रब को पहचान लिया।
* एहसान, ज़बान को बन्द कर देता है।
* मीठी ज़बान दूसरों को भाई बना देती है।
* बेवक़ूफ़ हमेशा मुहताज रहता है।
* लालची हमेशा ज़लील होता है।
* इल्म अदना (मामूली) को आला (बड़ा) बना देता है।
* अक़्ल से मुफ़ीद कोई दौलत नहीं।
* नेक अमल से अच्छी कोई तिजारत नहीं।
* अपनी ग़लती पर शरमिन्दा होना ग़लतियों को मिटा देता है।
* किसी पर झूठा इलज़ाम लगाना आसमान से ज़्यादा भारी है।

* दानाई और अक़्ल हासिल करो चाहे दुश्मन ही से मिले।
* ग़फ़लत का नतीजा शरमिन्दगी है।
* सबसे बड़ा ऐब यह है कि तुम दूसरों के ऐबों को ढूँढो।
* घमण्ड तरक़्क़ी में रुकावट डालता है।
* हसद करनेवाले को कभी आराम और सुकून हासिल नहीं होता।
* कहनेवाले की बातों पर ध्यान दो।
* ज़्यादा अक़्लमन्द बातें कम करता है।
* शक और शुब्हे की बुनियाद पर किसी से ताल्लुक़ ख़त्म न करो।
* बहुत ज़्यादा मसलहत का ख़याल रखनेवाले बहादुर नहीं होते।
* बड़ाई अक़्ल और अदब से हासिल होती है न कि ख़ानदान व नसब से।

देखा आपने! कितनी प्यारी-प्यारी नसीहतें आप *(रज़ि.)* ने फ़रमाई हैं। उनपर अमल करने की अल्लाह हमें भी तौफ़ीक़ अता फ़रमाए। आमीन!

बच्चों के लिए कुछ हिन्दी पुस्तकें

अन्धा इनसाफ़	मतीन तारिक़ बाग़पती
एक इनसान दो किरदार	माइल ख़ैराबादी
क़ौमों की कहानियाँ	सय्यद नज़र ज़ैदी
गुड्डू की गुड़िया	माइल ख़ैराबादी
तौहीदवाला शहज़ादा	माइल ख़ैराबादी
प्यारे नबी ऐसे थे!	माइल ख़ैराबादी
प्यारे नबी कैसे थे?	इरफ़ान ख़लीली
बिसमिल्लाह की बरकत	माइल ख़ैराबादी
बड़ों का बचपन	माइल ख़ैराबादी
बड़ों की माएँ	माइल ख़ैराबादी
सबक़ आमोज़ क़ुरआनी क़िस्से	माइल ख़ैराबादी
सच्चा वायदा	मतीन तारिक़ बाग़पती
हम ऐसी बनें!	माइल ख़ैराबादी
हमारा इब्ने-बतूता	माइल ख़ैराबादी
आसान कहानियाँ	अफ़ज़ल हुसैन
आसान कहानियाँ 1	अफ़ज़ल हुसैन
आसान कहानियाँ 2	अफ़ज़ल हुसैन
आसान कहानियाँ 3	अफ़ज़ल हुसैन
आसान कहानियाँ 4	अफ़ज़ल हुसैन
क़ुरआन की बातें-1	सय्यद नज़र ज़ैदी
क़ुरआन की बातें-2	सय्यद नज़र ज़ैदी
सच्चा दीन (1,2,3,4)	अफ़ज़ल हुसैन
हमारे बुज़ुर्ग (1, 2)	माइल ख़ैराबादी
हमारे हुज़ूर *(सल्ल.)*	इरफ़ान ख़लीली